Sahitya Manthan
A Peer-Reviewed, Open Access e-journal
ISSN: 2582 6867, Website: http://www.sahityamanthan.in
Year-2, Issue-5, Continuous Issue-11, January - February 2022

इतिहास और संस्कृति: मुक्तिबोध का साहित्य

इतिहास और संस्कृति की बहुत सुन्दर और सटीक व्याख्या देते हुए मुक्तिबोध ने अपनी पुस्तक 'भारत : इतिहास और संस्कृति' में लिखा है "..... समाज की गतिशीलता में राजनैतिक प्रक्रिया अनेक प्रक्रियाओं में से एक हैं । समाज को विकासशील बनाने वाली अन्य महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है सांस्कृतिक प्रक्रिया । जीवन जैसा है उसे अधिक सुंदर, उदात्त और मंगलमय बनाने की इच्छा आरम्भ से ही मनुष्य में रही है । यही इच्छा जब सामाजिक स्तर पर रुप लेती है तब वह संस्कृति कहलाती है, जिसके अंतर्गत धर्म, नीति, कला, साहित्य, संगीत आदि आते हैं । संस्कृति समाज की मूल जीवनदायिनी शक्ति है, राजनैतिक दासता सदियों रही, पर संस्कृति की शक्ति के कारण यह जाति जीवित रही और विकास करती गई ।

गजानन माधव मुक्तिबोध उन पीढ़ियों में से एक है, जिन्होंने भारतीय सनातनी गुरुकुल परम्परा को नहीं देखा जिनकी शिक्षा – दीक्षा अंग्रेजी शिक्षा पद्धति पर आधारित व्यवस्था में हुई । विद्यालय के बाहर पुस्तकालयों में जितनी भी पुस्तकें हमारे राष्ट्र की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों तथा मूल्यों से जुड़ी हुई थी, उन्हें शासकों द्वारा जलाकर नष्ट कर दिया गया । इन पुस्तकों से सुसज्जित पुस्तकालयों की महत्ता विदेशी शासक बहुत अच्छी तरह से जानते थे, तभी उन्होंने बहुत पुस्तकों को लूट कर विदेश ले गए और और अपने अनुसार तोड़ मरोड़ कर पुन: इतिहास लेखन कार्य किए । इसके साथ जिन्हें ले जाने में असमर्थ थे उन्हें नालन्दा जैसे कई पुस्तकालयों में जलाकर नष्ट कर दिए । उदाहरण – स्वरूप रामरख सिंह सहगल के कथन को देखा जा सकता है, जिसे उन्होंने विदेशी शासकों की इसी षड़यंत्र को रेखांकित करते हुए कहा था "..... यह एक मानी हुई बात है कि इतिहास का लोप होना मानो जाति का लोप होना है, शिक्षा ही एक ऐसी वस्तु है जिसकी बदौलत जाति बन और बिगड़ सकती है, बचपन में बालकों को जैसी शिक्षा दी जाती है युवा होने पर वे उसी लाइन पर चलते हैं ।.... छोटे रहने पर हमें यदि अपने पूर्वजों के कार्यों, आत्म– गौरव और उनके धर्म परायणता का पाठ भी न पढ़ाया जाएगा तो भला बच्चों से आप यह कैसे आशा कर सकते हैं कि वे अपने कर्त्तव्य को समझ सकेंगें ।..... पुराने बादशाह हमारे इतिहासों को नष्ट करने में बड़े चतुर थे ।' तककोत नासरी' में लिखा है कि कुतुबद्दीन ऐवक़ के ज़माने में जब बिहार फतह हुआ तब एक लाख के करीब तो केवल ब्राह्मण ही कत्ल किये गए थे और हिन्दुओं का एक क़दीमी कुतुबखाना(पुस्तकालय), जिसमें बहुत पुरानी –पुरानी किताबें मौजूद थीं, जला दिया गया । ..... सन् 1262 में वख़ियार ख़िलजी के सेना नायक 'मुहम्मद विनसाल' की आज्ञा से उदन्तापुरी बिहार नालन्दा और बोध गया के पुस्तकालय जला दिये । फिर अलाउद्दीन ख़िलजी ने आन्हिलवाड़ पाटन का मशहूर पुस्तकालय जलवा दिया । 'तवारीख फिरोजशाही' से ज्ञात होता है कि फिरोज तुगल ने कोहान में बहुत सी संस्कृत की पुस्तकें जलवा डाली । 'सैर मुताखरीन' देखने से पता चलता है कि औरङ्गजेब ने अपने शासन के 11वें वर्ष में

इतिहास लिखना बन्द कराके अपने कारनामों पर परदा डालना चाहा और जहाँ जो संस्कृत की पुस्तकें वह पाता जलवा देता था । कहने का अर्थ यह है कि अब जो बचे बचाए इतिहास देखने में आ रहे हैं वह सरासर पक्षपात से भरे हैं । निष्पक्ष लेखनी से लिखा हुआ इतिहास ढूँढ़ने से भी नज़र नहीं आता । इनमें से अधिकांश हमारे गौरांङ्ग शासकों ने ही लिखे हैं ।"2

मुक्तिबोध ने भी इस तथ्य को स्वीकारा है । उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारत : इतिहास और संस्कृति' की आरम्भिक पृष्ठों में निम्नलिखित पंक्तियाँ अंकित की है ---

"जल रही है लाइब्रेरी
पार्सिपालिस की
मैंने सिर्फ नालिश की
अंधेरी जिस अदालत में—— ।"3

अत: सत्य की खोज मुक्तिबोध प्राय: अपने सभी रचनाओं में करते हैं ।

उदाहरणस्वरुप : अंधेरे में, एक अंत:कथा, एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म कथन, एक स्वप्न कथा, चाँद का मुँह टेढ़ा है, जब प्रश्न चिह्न बौखला उठे, दिमागी गुहांधकार का औरांग उटांग, ब्रह्मराक्षस, भूल – गलती, मैं उनका ही होता, मैं तुम लोगों से दूर हूँ इत्यादि कविताएँ तथा कुछ कहानियाँ ,अंधेरे में, क्लॉड ईथरली, काठ का सपना, जंक्शन, पक्षी और दीमक, प्रश्न, ब्रह्मराक्षस का शिष्य इत्यादि ।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के आस पास ही मुक्तिबोध की लेखनी चलनी आरम्भ होती है । परन्तु प्रेमचन्द या अन्य लेखकों की तरह वे जीवन पर्यन्त मार्क्सवादी या आदर्शवादी नहीं बने रह पाते हैं । इसलिए इनकी कुछ आरम्भिक रचनाओं को देखकर आलोचक तो यह कह सकते हैं कि यदि मुक्तिबोध की रचना प्रक्रिया को समझना हो तो रुसी उपन्यासकारों - तोल्सतोय, दोस्तोवस्की तथा गोर्की के साहित्य को देखना चाहिए । परन्तु बाद की प्रौढ़ावस्था की रचनाओं पर यह कथन उपयुक्त नहीं होता है क्योंकि उनमें मुक्तिबोध को अपने इतिहास और संस्कृति को जानने की छटपटाहट दिखती है । यह छटपटाहट उन्हें अपने लिए ही सिर्फ महसूस नहीं होती है, अपितु वे तो आने वाली कई पीढ़ियों के लिए सतर्क होना चाहते हैं । इन सभी पहलुओं को उद्घाटित करने के लिए वे 'वसुधा' पत्रिका '57, 58', 60' के अंक में एक खुले स्तम्भ 'एक साहित्यिक की डायरी' को चुनते हैं । इन लेखों को बाद में श्रीकांत वर्मा जी पुस्तकाकार देते हैं । इसके साथ ही उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों को वास्तविक इतिहास से जोड़ने के लिए विद्यालयी स्तर की एक सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास की पुस्तक प्रकाशित करते हैं। अपने गहन उद्देश्य को प्रकाशित करते हुए उन्होंने पुस्तक की भूमिका में लिखा है - "मेरी दृष्टि में हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की जानकारी किशोरों के लिए बहुत आवश्यक है । इससे वे इस देश की परंपरा को सही ढंग से समझ सकेंगे । उनकी भावनाओं का विस्तार होगा और वे उदारता का दृष्टिकोण अपना सकेंगे । अपने इस अति प्राचीन समाज के मर्म को समझना बहुत जरूरी है..... वैदिक काल और बौद्ध युग तथा मुगल सल्तनत के बाद के हमारे आधुनिक युग पर मैंने विस्तार से लिखा है क्योंकि बहुत दूर और बहुत पास की वस्तुएँ प्रायरू धुंधली दिखती है । मेरा उद्देश्य है कि पाठक अति प्राचीन और अति नवीन परंपराओं को ग्रहण कर सकें ।"4

जाहिर सी बात है "प्रत्येक क्रांति की एक प्रक्रिया होती है और प्रत्येक क्रांतिकारी पार्टी सिर्फ राजनीतिक दल बंदी तक सीमित नहीं होती है, अपितु अपने सामाजिक उत्तरदायित्व से भी जुड़ी

हुई होती है । अत: जीवन के प्रत्येक समस्याओं का समाधान उन्हें प्रस्तुत करने ही होते हैं । परन्तु समस्याएँ इतिहास की देन होती हैं । वस्तुत: समाधान प्रस्तुत करने के लिए समाज की विकास प्रक्रिया को समझना अत्यंत आवश्यक होता है ।''5

मुक्तिबोध अपनी रचनाओं द्वारा समाज की इन्हीं ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए पड़ताल करते हैं ।

ऐसी बात नहीं थी कि मुक्तिबोध सिर्फ किशोरों की चिंता करते थे । वह तो साहित्यिक विचारधारा को भी हिंदी साहित्य के इतिहास में योगदान देने के लिए एक दृष्टि देते हैं । व्यक्तिवाद का विरोध करते हुए उन्होंने छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद की सीमाओं का उल्लेख अपने निबंधों में किया ही है, साथ ही भक्ति–आंदोलन की विशिष्टताओं को भी दर्शाते हैं । अपनी बातों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने 'एक साहित्यिक डायरी' में लिखा है-- ''मध्ययुगीन भारतीय काव्य में कुछ महत्वपूर्ण को छोड़ प्रधान प्रवृत्ति वस्तुपक्ष के वर्णन की ओर ही अधिक रही है । इस प्रवृत्ति ने आत्मपक्ष को गौण स्थान दिया । नए छायावादी युग ने आत्मपक्ष को ही प्रधान स्थान दिया और वस्तु पक्ष को गौण । यदि हिन्दी की नई कविता को साहित्य के इतिहास में या यूँ कहिए कि संस्कृति के इतिहास में कोई महत्वपूर्ण भाग अदा करना है तो उसे काव्य की प्रकृति तथा शिल्प में आत्म– पक्ष और वस्तु –पक्ष का समन्वय उपस्थित करना होगा ।''6

बहरहाल मुक्तिबोध ने जिस 'ब्रह्मराक्षस' शब्द का प्रयोग अपनी कविता के लिए तथा 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' नामक कहानी के लिए करते हैं, उसमें भी भारतीय संस्कृति झलकती है । ब्रह्मराक्षस का अर्थ वह राक्षस जो ज्ञानी पंडित हो और रामायण तथा महाभारत युग में भी ब्रह्मराक्षस रावण तथा कंस के रूप में उभरता है । उनके पास ज्ञान का अथक भंडार था, परन्तु अहंकार के कारण उनकी कोई शिष्य परंपरा नहीं चल पाई कुछ अपवादों को छोड़कर । अत: प्रत्येक व्यक्ति के मन में दूसरे पक्ष में यही ब्रह्मराक्षस विराजमान है । सदाचार को अपनाकर प्रत्येक व्यक्ति राम और कृष्ण बनना चाहता है और बन भी जाता है । परन्तु, रावण और कंस को प्रत्येक वर्ष नष्ट करने के बाद भी मन के किसी कोने में शैतानी प्रवृत्ति अपना स्थान बनाने में सफल हो जाती है ।

उदाहरण स्वरुप 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' कहानी के अंतिम भाग को देखा जा सकता है गुरु ने दु:ख पूर्ण कोमलता से कहा शिष्य! स्पष्ट कर दूँ कि मैं ब्रह्मराक्षस हूँ , किन्तु फिर भी तुम्हारा गुरु हूँ । मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए।अपने मानव जीवन में मैंने विश्व की समस्त विद्या को मथ डाला, किन्तु दुर्भाग्य से कोई योग्य शिष्य न मिल पाया कि जिसे मैं समस्त ज्ञान दे पाता । इसलिए मेरी आत्मा इस संसार में अटकी रह गई और मैं ब्रह्मराक्षस के रुप में यहाँ विराजमान रहा... ।''7

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध का साहित्य अथाह सागर की तरह है जिसमें इतिहास और संस्कृति की अपरिमित धाराएँ अपनी मौज में हैं । जिनका उल्लेख किसी एक संक्षिप्त लेख में नहीं हो सकता । किंतु, इसके साथ ही दु:ख के साथ यह जरूर कहा जा सकता है कि अपने पौरुष पर हिन्दी साहित्य को विशिष्ट शिखर पर पहुँचाने के बाद भी समकालीन आलोचकों की आलोचनाओं ने मुक्तिबोध की रचनाओं तथा पाठक के मध्य बहुत बड़ा दरार डालने की चेष्टा की। मुक्तिबोध की कुछ एक कविताओं को मानदंड बनाकर आलोचकों ने केशवदास की तरह कठिन काव्य के प्रेत के रूप में प्रस्तुत किया । यही कारण है कि उन्हें अपने समकालीनों के लिए कहना पड़ता है - ''मैं तुम लोगों से इतना दूर हूँ तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है

कि जो तुम्हारे लिए विष है, मेरे लिए अन्य है ।''8

इसी कारण अशोक बाजपेई ने उन्हें गोत्रहीन कवि कहा है । निराला की तरह मुक्तिबोध की रचनाओं में मौलिकता स्पष्ट रुप से झलकती है और यह मौलिकता सिर्फ शिल्प में नयापन लाने के लिए नहीं होती थी, अपितु अपने इतिहास और संस्कृति को प्रतिस्थापित करने के लिए होती थी । अत: कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध की रचनाओं का विश्लेषण ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से ही होना चाहिए ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1– मुक्तिबोध गजानन माधव भारत : इतिहास और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन दिल्ली चौथा परिवर्द्धित संस्करण --2009, पृष्ठ संख्या – 13

2– सहगल रामरख सिंह, हम असहयोग क्यों करें ? असहयोग रहस्य (नवीन संस्करण), प्रकाशक – चाँद कार्यालय इलाहाबाद द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या – 25-26

3– मुक्तिबोध गजानन माधव, भारत : इतिहास और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन संस्करण – 2009, पृष्ठ संख्या – 2

4– उपर्युक्त पृष्ठ संख्या – 14

5– हंसराज रहबर, भगत सिंह एक ज्वलंत इतिहास, प्रकाशक – भगत सिंह विचार मंच दिल्ली, साक्षी प्रकाशन, संस्करण – 2014,पृष्ठ संख्या – 180

6– मुक्तिबोध गजानन माधव एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली 13वाँ सं– – 2014, पृष्ठ संख्या– 108 -109

7– मुक्तिबोध 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' - ई बुक्स

8– मुक्तिबोध, 'मैं तुमसे दूर हूँ' ई बुक्स ।

डॉ० ज्योति सिंह
सहायक प्राध्यापिका
वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय सूरत
संम्पर्क सूत्र - 7206536258
jyotisinghnik195@gmail.com